International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(1): 30-32

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(1): 30-32
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 08-11-2018
Accepted: 12-12-2018

डॉ. पूनम कुमारी
अखाड़ाघाट, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

Correspondence
डॉ. पूनम कुमारी
अखाड़ाघाट, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

शुक्रनीति के जीवनोपयोगी तथ्य

डॉ. पूनम कुमारी

प्रस्तावना

श्रीमदभागवत् गीता के दसवें अध्याय के 37 वे श्लोक में भागवन् श्री कृष्ण कहते है– कवीनामुशना कवि । अर्थात कवियों मे शुक्राचार्य कवि मैं ही हूँ। श्री हरि का यह कथन हमें शुक्राचार्य के प्रति चिन्तन करने के लिए प्रेरित करता है। शास्त्रों के अनुसार प्रकाण्ड विद्वान को ही कवि कहा जाता है। महाभारत में यह वर्णन है कि नीतिशास्त्र के आचार्यो में ब्रह्मा आद्य गुरू है। उनसे भगवान शंकर ने उसे ग्रहण किया। शंकर जी से इन्द्र को इन्द्र से देवगुरू वृहस्पति को प्राप्त हुआ ।फिर शुक्राचार्य जी ने इसका प्रणयन किया। इससे पहले एक लाख अध्याय थे जिसको एक हजार अध्यायों मे शुक्राचार्य ने समाहित किया।

देशकाल परिस्थिति के अनुसार शुक्राचार्य जी ने उन एक लाख अध्यायों मे से तत्कालीन समाज के लिए उपयोगी नीतियों की अपने नीतिशास्त्र में शामिल किया। उसी प्रकार शुक्र की नीतियों में भी आज के समय के अनुकुल कुछ बातें अप्रासंगिक हो चुकी है परन्तु अधिकांश बाते आज भी अनुकरणीय एवं आवश्यक है।

कहा जाता है कि आचरणके बिना ज्ञान केवल भार–मात्र ही होता है।इसे आज के पश्चिमी जगत् ने 'अप्लायड एथिक्स और अप्लायड फिलॉसोफी' के रूप में स्वीकार किया है। अतः अनुपयुक्त नीतिशास्त्रों की वर्तमान विद्या में शुक्रनीति के जीवनोपयोगी तथ्यों का पुनः प्रांसगिक हो जाता है। वर्तमान में जो संक्षिप्त नीतिशास्त्र उपलब्ध है, वह अति प्रमाणिक एवं प्रसिद्ध है। उसका प्रत्येक सिद्धांत जीवन में सफलता की कुंजी है। शुक्राचार्य के इस आधुनिक संस्कारण में मात्र पॉच अध्याय एवं 2200 के लगभग श्लोक है। शुक्राचार्य के नीति के उपदेश बहुत ही उपयोगी एवं अनुपालनीय है।

महाभारत में अपनी पुत्री देवयानी को सहिष्णुता तथा क्षमा की महिमा बताते हुए शुक्राचार्य कहते है कि – जो मनुष्य सदा दूसरों के कठोर वचन, दूसरों द्वारा की गई निन्दा को सह लेता है, उसे समझो वह सम्पूर्ण जगत् पर विजय प्राप्त कर लिया। पुनः वे कहते हैं– जो उत्पन्न क्रोध को अक्रोध के द्वारा मन से निकाल देता है, समझो उसने सम्पूर्ण संसार को जीत लिया । इसी प्रकार राजाओ के कर्त्तव्य, पुत्र का दायित्व, लोक व्यवहार के आदर्श आदि कई ऐसे जीवनोपयोगी तथ्य है जिन पर शुक्राचार्य जी ने प्रकाश डाला है। यहाँ इसी से सम्बन्धित कुछ प्रमुख श्लोक एवं उनका भावार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है जो अध्ययन के दृष्टिकोण से प्रासंगिक है, जैसे कि दण्ड–बिधान को वर्णन करते हुए शुक्राचार्य लिखते हैं –

"राजदण्डभयाल्लोकः स्वस्वधर्मपरो भवेत।
वो हि स्वधर्मनिरतः स तेजस्वी भवेदिह।।"

अर्थात् संसार के लोग राजदण्ड के भय से अपने–अपने धर्म के पालन में तत्पर होते है। जो लोग अपने कार्य में लगे होते है, वही इस संसार में तेजस्वी होते हैं।

धर्म की प्रशंसा करते हुए शुक्राचार्य जी कहते हैं –

"विना स्वधर्मान्न सुखम् सवधर्मो हि परं तपः।
तपः स्वधर्मरूपम् यद्धिधित येन वै सदा।।"

अर्थात् विना स्वधर्म का पालन किए सुख नहीं होता है और धर्म का पालन करना परम तप है। अतः जिससे स्वधर्म पालनरूपी तप को सदा बढाया जाता है, वे लोग इस संसार में सुख की प्राप्ति करते है। आजकल लोग धर्म की बात वे करते है,

परन्तु स्वधर्म की चर्चा नहीं करते है यही कारण है कि आज धर्मपालन में बहुत सारी कठिनाईया आ गई है। किसी का स्वधर्म न तो ऊँचा है और न नीचा। प्रत्येक व्यक्ति को स्वधर्म रूपी कर्म करते हुए स्वयं को ईश्वर में लगा देनी चाहिए। ऐसी बात नहीं है कि केवल ब्रह्मण ही स्वधर्म का पालन करके ईश्वर की प्राप्ति कर सकता है, बल्कि क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र भी स्वधर्म का पालन करते करते उच्च गति को प्राप्त कर सकता है। तभी तो शुक्राचार्य जी ने जाति–व्यवस्था को खण्डित करते हुए कहा हैं कि जाति व्यवस्था के कारण हमारा समाज विखण्डित हो जाता है। समाज में अनेक रूढिंवादिता पनप जाती है जिससे समाज का विकास अवरूद्ध हो जाता है। अतः शुक्राचार्य जी जाति को वंशानुगत न मानकर कर्म पर आधारित मानते हैं । उनका कहना है कि कोई जन्म से ब्राह्मण ,क्षत्रिय, वैश्य शुद्र या मलेच्छ नहीं होता, अपितु अपनें गुणो एवं कर्मो के कारण ही होता है

''न जात्या ब्राह्मण च न क्षत्रियों वैश्व एवं न शुद्रों न च
वै मलेच्छो भेदित गुण–कर्मणि।।

अगर शुक्र जी के इस श्लोक को लोगो के द्वारा आत्मसात किया जाता तो आज हमारा समाज बहुत आगे बढ गया होता। जातीय व्यवस्था के कारण समाज के विभिन्न वर्गों में मतभेद उत्पन्न हुआ जिसने आगे चलकर विकराल रूप धारण कर लिया। सभी जीव एक ही परमेश्वर के सन्तान है ऐसा जानकर सबों के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करते हुए सुखमय जीवन व्यतीत किया जा सकता है। शुक्राचार्य कहते है।

''ब्रहमाणस्तु समुत्पन्नाः सर्वे ते किम् नु ब्राहमणः।
न्वर्णतो न जनकाद ब्रहमतेजः प्रपधेते।।

सम्पूर्ण जीव ब्रह्मा से उत्पन्न हुए है अतएव वे सभी ब्राह्मण कहला सकते हैं क्योंकि जाति वर्ण से या पिता से ब्रह्मतेज नहीं प्राप्त होता है।
इसी प्रकार कर्मों के फल के विषय मे शुक्रजी कहते है कि मनुष्यों के पूर्वार्जित कर्मों के फल भोगने के योग्य जब जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है तब उसके पाप अथवा पुण्य कर्म करने में मनुष्य समर्थ होता है अन्यथा नही–

''प्राक् कर्म फलभोगार्हो बुद्धि संजायते नृणाम्।।
पापकर्मणि पुण्ये वा कर्त्तुम् शक्तो न च अन्यथा।।

इस प्रकार उनका मानना है कि जैसे कर्मों का फल उदय होता है उसी के अनुसार वैसी बुद्धि होती है तथा होनहार के अनुसार वैसे साथी या सहायक कर्म भी मिलते हैं।

''वुद्धिरूत्पद्यते तादृग् यादृक् कर्मफलोदयः।
सहायाः नादृशा एवं यादृशी भवितव्यता।।

अतः शुक्रजी कहते है यदि यह निश्चित हो कि जो कुछ होता है सब प्राक्तन कर्म के अनुसार होता है, तो यह कर्तव्य है और नहीं है इसके बोधक सभी उपदेश व्यर्थ हो जायेगा। अतः जो बुद्धिमान् तथा प्रशसनीय चरित वाले है, वे पुरूषार्थ का बड़ा मानते है अर्थात् उद्योग करते हैं। जो पुरूषार्थ करने में असमर्थ कायर पुरूष है वे ही भाग्य के भरोसे बैठे रहते हैं।

''धीमन्तो वन्द्यचरिता मन्यन्ते पौरूषं महत।
अशक्ताः पौरूषम् कर्त्तुम् क्लीबा देवमुपासते।।

भाग्य और पुरूषार्थ इन दोनो में से जो दुर्बल होता है उसको हटाने वाला सदा बलवान् होता है। सबल एवं दुर्बल का ज्ञान केवल फल प्राप्ति से होता है। मनुष्यों का जो पुरूषार्थ फल प्राप्ति से होता है। उसमे उस जन्म के तात्कालिक कर्मों का ही साथ होता है।
अच्छे या बुरे कार्यों के विषय में शुक्रजी कहते हे अच्छे कार्य से अच्छा फल होता है तथा बुरे कार्यों का बुरा फल होता है अतः शास्त्र द्वारा अच्छे–बुरे कार्यो का ज्ञान प्राप्त कर बुरे का त्याग तथा अच्छे को ग्रहण करना चाहिए।

''भवतीष्टम् सत्क्रिययानिष्ठम् तद्विपरीतया।।
शास्त्रतः सद्सज्ज्ञात्वा त्यक्त्वा संत्सत्समाचरेत्।।

क्योंकि अच्छे फल देनेवाले कार्यों में मनुष्य का मन लगता है और बुरे फलवाले कार्यों मे किसी का मन नहीं लगता हैं नीति का मूल विनय है और शास्त्र में निश्चय होने से विनय होता है विनय मूल इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करता है अतः जो इन्द्रियजयी है वही शास्त्र ज्ञान प्राप्त करता है।

जैसा कि मनुजी मानते है।
''श्रद्धावॉल्लमते ज्ञानम् तत्परः संयतेन्द्रियः।।
ज्ञानम् लब्ध्वा पराम् शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

अर्थात् श्रद्धावान् व्यक्ति अपने इन्द्रियों को वश मे रखकर ज्ञान प्रापति के बाद उसे चिरकाल तक शान्ति प्राप्त होती है।
इसी प्रकार संगति के सम्बन्ध में शुक्रजी का कहना है कि धर्म और सुख पाने के लिए सज्जनो के साथ संगति करनी चाहिए क्योकि सुजनों से सेवित राजा सभा के बीच सुशोभित होता है। जैसे चन्द्रमा और नवीन खिले कमलों वाला तालाब लोगो के चित्त को आनन्दित करता है उसी प्रकार सज्जनों का व्यवहार भी आनन्दित करता है।

''सुजनैः संगमम् कुर्याद्वधर्माय च सुखाय च।
सेव्यमानस्तु सुजनेर्म्हानति विराजते।।
नीतिशतक के रचयिता भर्तृहरि कहते हैं–
दुर्जनः परिहर्त्तव्यो विद्यालंकृतेऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः।।

अर्थात् विद्या के अलंकृत दुर्जनों को छोड़ देना चाहिए। क्या मणिधारी सर्प भयंकर नहीं होता? अर्थात् वह तो और भी भयंकर होता है ठीक उसी प्रकार आचार्य शुक्र का मत है कि अपना हित चाहनेवाले व्यक्तियों का दुर्जनों से बचकर रहना चाहिए। जब दुर्जन सामने हो तो उसे सम्मान देकर प्रसन्नचित रखें।
पुनः शुक्रचार्य जी मधुर वाणी के सम्बन्ध में कहते है कि–

''नित्यं मनोहारिण्या वाचा प्रहलादयेत जगत्।
उद्वेजयति भूतानि क्रूरवाग्घ्नदोऽपि सन्।।

अर्थात् नित्य मनोहर वचनों से जगत् को आनन्दित करना चाहिए, क्योंकि यदि धन देने वाला कुबेर के समान भी हो किन्तु क्रूर वाणी बोलने से वह मनुष्यों का उद्विग्न नहीं करता है। महर्षि चाणक्य भी मानते है कि जब प्रियवाणी बोलने से सभी जीव प्रसन्न होते है, तो हमें वैसी प्रिय वाणी बोलने में कमी नही करनी चाहिए। प्रियवाणी हमेशा व्यक्ति को मनोवांछित फलों को प्रदान करने वाला होता है।
विद्याप्राप्ति के सम्बन्ध में वे कहते है–

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थम् च साधयेत।।
न्त्याज्यौ तु क्षणकणौ नित्यं विद्याधनार्थिना।।

अर्थात् विद्या और धन चाहने वाले को नित्य क्रम से क्षण तथा कण का त्याग करना नहीं चाहिए किन्तु क्षण क्षण भर प्रतिदिन अभ्यास करके विद्या का एवं कण–कण का संग्रह कर धन का अर्जन करना

चाहिए शुक्रजी विद्यारूपी धन का सर्वोतम मानते है क्योंकि अन्य सभी धन का उपार्जन विद्या के द्वारा ही होता है विद्या दान करने से बढता है , जबकि सभी धन दान करने से घटते है विद्याा में भार नहीं होता और न ही कोई उसे कोइ उठा कर ले जा सकता है। इस प्रकार आचार्य शुक्र विद्याप्राप्ति पर अधिक बल देते है। वस्तुतः विद्या व्यक्ति का तीसरा नेत्र है जिससे वह जीवन के मर्म का समझ पाता है। चाणक्य जी कहते है–

''रूप्यौवनम्पन्ना विशाल कुलसंभवाः।
विद्याहीना नशोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुका।।

आचार्य शुक्र पुत्र के लिए माता पिता की सेवा को सर्वोंपरि मानते हुए कहते हैं–

''पित्तोराज्ञा पालयति सेवने च निरालसः।।
छायेव वर्तते नित्यं यतते चागमाय वै।
कुशलः सर्वविद्यासु स पुत्रः प्रीतिकारकः।
दुखदो विपरीतो यो दुर्गणो धननाशक।।

अर्थात् जो पुत्र माता पिता की आज्ञा का पालन करता है और उसकी सेवा करने में आलस्य नहीं करता है बल्कि छाया के समान सदा उनका अनुगमन करता है, धन या विद्या अर्जन हेतु सदा प्रयत्नशील होता है वही पुत्र माता पिता का आनन्द बढाने वाला होता है और जो माता पिता के आज्ञा के विपरीत कार्य करनेवाला होता है दुगुर्णों से युक्त तथा धन नष्ट करने वाला होता है वह दुःखदायी होता है अतः राजा का ऐसा नियम बनाना चाहिए जिससे कर्मचारी सही रूप से अपने कर्मों का पालन करे। उनका कहना है हो कर्मचारी माता पिता और स्त्री इनका भरण–पोषण करना छोड़कर अपना मनमाना व्यवहार रखता है उसे हथकड़ी –बेड़ी डालकर कैद रखना चाहिए। उसका तनख्वाह का आधा द्रव्य उन सबो को प्रयत्नपूर्वक राजा को देना चाहिए।

इस प्रकार शुक्रनीति में अनेक जीवनोपयोगी तथ्यों का वर्णन किया गया है जिसे अपनाकर आत्मसात कर व्यक्ति अपने जीवन के सभी सुखो को प्राप्त कर सकता है। यह ग्रन्थ जीवन मे सफलता तथा सच्चा सुख पाने की वे कुंजियॉ है जिनसे मानव आज के आधुनिक युग में भी जीने की कला सीख सकता है ।नीति के सुमार्ग पर चलने से इहलोक और परलोक दोनो सुधर जाता है । शुक्राचार्य के इसी योगदान के कारण भगवान विष्णु ने उन्हें कवियों में श्रेष्ठ बताते हुए उनको अपना प्रतिरूप माना है।

सन्दर्भ–सूची

1. शक्रुनीति प्रथम अध्याय
2. मनुस्मृति– 4/159
3. शुक्रनीति– द्वितीय अध्याय
4. नीतिशतक
5. शुक्रनीति– तृतीय अध्याय
6. शुक्रनीति– चतुर्थ अध्याय
7. चाणक्य नीति
8. शुक्रनीति चतुर्थ अध्याय